

भूमण्डलीकरण के दौर में सन्त साहित्य की प्रासंगिकता

डॉ. ऋषिपाल,

एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,

हिन्दी-विभाग,

बाबू अनन्त राम जनता महाविद्यालय,

कौल, कैथल (हरियाणा) – 136021

Email: rishipalsuman@gmail.com

भूमण्डलीकरण के दौर में बाजारवादी संस्कृति के दुष्प्रभाव से मानव मन में असन्तोष एवं अशान्ति बनी हुई है। आज का दौर नई-नई तकनीक, विज्ञान एवं संचार साधनों से सम्पन्न युग है। वैश्वीकरण के दौर में समस्त संसार विज्ञान एवं संचार माध्यमों के कारण विश्वग्राम बन गया है। पलक झपकते ही आज मनुष्य किसी भी देश के नागरिक से घर बैठे क्षण में ही बात कर सकता है व एक दिन में कई देशों में आ-जा सकता है। आज मनुष्य सुबह का नाश्ता घर पर करके किसी दूसरे देश में दोपहर का भोजन लेकर रात को वापिस अपने घर लौट कर रात का भोजन अपने परिवार के साथ बैठकर कर सकता है। मानव ने जिन आवश्यकताओं को पूरा होने के स्वप्न देखे थे, वे सभी स्वप्न वर्तमान में विज्ञान एवं तकनीक के युग में चमत्कार की तरह पूरे होते दिखाई दे रहे हैं। मानव ने चाँद पर पहुंच कर अपने स्वप्न को साकार कर लिया है। भूमण्डलीकरण के दौर में बाजारवादी संस्कृति, विज्ञापनी दुनिया, विज्ञान की चकाचौंध, संचार के साधनों, भोगवादी प्रकृति एवं आज की अवसरवादिता की मनोवृत्ति ने मानव को संकीर्ण, संस्कार विहीन, स्वार्थी, अकेला, आत्मकेन्द्रित, तनावग्रस्त एवं उसके व्यक्तित्व को कमतर कर दिया है। हमारा देश विश्व गुरु की पदवी प्राप्त होने के गौरव के सम्मान से अलंकृत आज पाश्चात्य संस्कृति के कुप्रभावों से प्रभावित होकर अपने जीवन मूल्यों एवं आदर्शों से विमुख होता चला जा रहा है, जिसके कारण हमारे देश का सांस्कृतिक एवं नैतिक पतन होता जा रहा है। बाजारवादी संस्कृति ने व्यक्ति एवं समाज में असंतोष, अराजकता एवं अव्यवस्था प्रदान की है। हमारे देश में अहिंसा, गरीबी, भ्रष्टाचार, जीवन मूल्यों का पतन, अनक विद्रूपताओं एवं विसंगतियाँ पनप रही हैं। ऐसे भूमण्डलीकरण एवं बाजारवादी संस्कृति के दौर में प्रत्येक वस्तु, सम्बन्ध, संस्कार, व्यवस्था, व्यक्ति व कानून बिकाऊ हैं। वर्तमान में व्यक्ति, समाज, देश, मानवता के समक्ष असंख्य चुनौतियाँ, समस्याएँ, बाधाएँ, बीमारियाँ, गरीबी, अनपढ़ता आदि चुनौतियाँ सिर उठाए खड़ी हैं। भूमण्डलीकरण के दौर में हमारे समाज, देश, विश्व एवं मानवता के समक्ष यही चुनौती और प्रश्न है कि प्रकृति की इस सुन्दर रचना को विनाश रूपी राक्षस से कैसे बचाया जा सके?

मानवता के समक्ष ऐसे संकट एवं चुनौतियाँ पूर्व में भी आई हैं। वर्तमान की विकट स्थिति और अतीत के अनुभव से हमें विश्वास है कि सन्तों का साहित्य ही वह गुरुमंत्र है जो हमें इस बुरे दौर से व घोर कलि काल के समय में आत्म पहचान करा कर आत्मिक विश्वास के साथ चुनौतियों से सामना करने की शक्ति प्रदान करेगा। सन्तों के साहित्य में अमोघ शक्ति है। सन्तों के साहित्य रूपी उपवन में संस्कार, संस्कृति रूपी मीठे, मनमोहक, मनोहर फल लगे हैं जिनको देखने, श्रवण करने, सेवन करने, स्पर्श करने, आत्मसात करने मात्र से समस्त दुःख-दर्द, पीड़ा, कष्ट आदि से मुक्ति मिल जाती है। भूमण्डलीकरण एवं बाजारवादी संस्कृति के कारण सांस्कृतिक विघटन के साथ-साथ हम अपनी अस्मिता भी

खोते जा रहे हैं। भारतीय लोक जीवन में सनातन मानव मूल्यों की उपेक्षा एवं अवहेलना हो रही है। मानवता दिन-प्रतिदिन सांस्कृतिक प्रदूषण के गर्त में फंसती चली जा रही है। चारों ओर भ्रष्टाचार, अराजकता का वातावरण बना है। स्वार्थपरता, ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार के वातावरण में मानवता दिग्भ्रमित एवं पीड़ित दिखाई देती है। किसी भी राष्ट्र की उन्नति, उत्थान एवं गर्व और गौरव के लिए उसकी लोक सांस्कृतिक विरासत के अस्तित्व का सुरक्षित रहना अति आवश्यक है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। “साहित्य जीवन की विविधता की ऐसी समग्र अभिव्यक्ति है, जिसमें व्यक्ति की सभी प्रवृत्तियों का समावेश तो होता है, साथ ही जो व्यक्ति के बोध को उन्नत करने में प्रेरक भी बनती है और जिसमें व्यक्ति के जीवन को सार्थक दिशा उपलब्ध होती है और जीवन मूल्यों का महत्त्व ज्ञात होता है। साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह अपने परिवेश को केवल प्रतिबिम्बित ही नहीं करता वरन् उसे परिवर्तित भी करता है।”¹ इसलिए हमें भूमण्डलीकरण के दौर में मानता के अस्तित्व को बचाने के लिए एक बार फिर सन्त-साहित्य का सहारा लेना होगा। सन्त साहित्य में सूर, कबीर, दादू, नानक, गरीबदास आदि कवियों के द्वारा मानवता के उत्थान, उद्धार एवं उन्नयन का ही जिक्र मिलता है। इन कवियों के साहित्यिक प्रतिमान ईश्वरीय रूप में मनुष्य के प्रतिष्ठापक कहे जा सकते हैं। डॉ. नगेन्द्र ने इस सम्बन्ध को दो तरह से देखा है – “एक क्रिया के रूप में, दूसरा प्रतिक्रिया के रूप में। क्रिया रूप में साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है और प्रतिक्रिया रूप में वह जीवन का निर्माता और पोषक है।”² डॉ. नामवर के अनुसार, “साहित्य सत्य का उद्घाटन करता है, वह युग और काल की सीमाओं और सतहों को तोड़ता है और अनेक भ्रमों को हटाकर सत्य को खोलकर पाठक या श्रोता के समक्ष रखता है। यह उद्घाटन कार्य ही साहित्य का रचना-कार्य है।”³ “यदि समाज की यह माँग है कि साहित्य किसी बेहतर संसार की परिकल्पना दे तो साहित्य को उन अंधेरों, जटिलताओं, संश्लिष्टताओं, आयामों और स्तरों से उलझना पड़ेगा, जिनका समाज विरोध करता है। उनसे जूझें बिना साहित्य उस स्तर तक नहीं पहुंच सकता।”⁴ जहां तक प्रासंगिकता की बात है, “प्रासंगिकता साहित्य को वर्तमान के सन्दर्भ में प्रतिफलित होने का सामर्थ्य देती है।”⁵

भूमण्डलीकरण के दौर में मानवता के त्रस्त जीवन में जीवन मूल्यों, मानव मूल्यों एवं आदर्शों की नितान्त आवश्यकता है। जन-जन की नज़रें सन्तों के साहित्य पर टिकती हैं। उन्हें सन्तों की वाणी रूपी अमृत से संतोष एवं तृप्ति मिलती है। रविन्द्र कुमार सिंह के शब्दों में, “सन्तों ने जीवन और जगत की वास्तविकता को पहचाना। उनका युग बोध और आत्म बोध दोनों अत्यन्त सूक्ष्म, तत्त्वपूर्ण और विस्तृत था। वे सौन्दर्य बोध से अधिक सत्य बोध के कवि हैं, सत्य ही उनका सौन्दर्य है। सन्तों ने जो चेतावनियाँ दी हैं, वे समाज के लिए सदैव कल्याणकारी हैं।”⁶ सन्तों के साहित्य से संदेश के रूप में यह बात कि –

“साईं के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोग”

उक्ति ने सिद्ध कर दिया कि मानव ही नहीं अपितु धरती पर ईश्वर के सभी जीव उसी के प्राणी हैं। छोटे से बड़े जीव में कोई अन्तर नहीं है। सन्तों ने मानवता को समता का सन्देश देते हुए कहा है कि –

“सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः”

आदि शिक्षा ने दिग्भ्रमित मानवता को ज्ञान का प्रकाश दिखाकर अज्ञानता के अन्धकार को मिटाने का सुन्दर कार्य किया है। सभी सन्तों ने भक्ति को प्रेम-भक्ति माना है। डॉ. राजदेव सिंह के शब्दों में, “भक्ति के बिना सारी साधनाएँ व्यर्थ हैं। कबीर ने इसलिए ज्ञान से नहीं, भक्ति से राम को जानने का उल्लेख किया है। कबीर ही नहीं सभी सन्त, ‘भक्त’ और ‘भगवान’ में कोई भेद नहीं मानते। जिस तरह पानी में नमक मिलकर एक रूप हो जाता है, उसी तरह भक्ति द्वारा भक्त और भगवान में अभेद स्थापित होता है।”⁷

भूमण्डलीकरण के दौर में सन्तों का साहित्य समस्त मानवता का कण्ठहार बना हुआ है। सन्त साहित्य को पढ़कर या सुनकर भ्रमित, पीड़ित एवं निराशाजनक स्थितियों में मानव के मन में सन्तोष, धैर्य, समभाव, शान्ति, आत्मविश्वास, त्याग, प्रेम एवं सद्व्यवहार की भावना जागृत होती है। सन्तों का मानना है कि सच्चे मन से भक्ति करने पर भगवान अपनी कृपा भक्तों पर करते हैं। भक्त और भगवान की प्रीति बिना स्वार्थ की होनी चाहिए। सन्तों ने अपने साहित्य के माध्यम से भारतीय लोक संस्कृति को बचाने के लिए अपनी वाणी को निराकार ईश्वर से जोड़कर अनेक सन्देश दिए। चाहे वे निर्गुणवादी सन्त जैसे – कबीर, दादू, रैदास, सदाना, रज्जब, मलूकदास, धन्ना, पीपा, प्राणनाथ, हरिदास, नानक, केशवदास, सुन्दरदास, बुल्लासाहब, धरनीदास, दरिया साहब, गरीबदास, जगजीवनदास, दूलनदास, नितानन्द, पलटू साहब, निश्चलदास, गुरु गोबिन्द सिंह आदि हों या फिर सूफी सन्त मलिक मोहम्मद जायसी, मंझन, सन्त मुल्ला दाऊद, कुतुबन आदि सभी ने साहित्यिक गलियारे से मानवता का सन्देश देकर लोक संस्कृति की रक्षा की है।

हजारों वर्ष पूर्व भी समाज में अनेक विकृतियाँ आ चुकी थीं। “सातवीं से बारहवीं शताब्दी के बीच प्राप्त लेखों से पता चलता है कि बौद्धों आदि के कारण वर्णाश्रम व्यवस्था में बहुत कमजोरियाँ आ गई थीं और समाज धीरे-धीरे अनेक आर्थिक-सामाजिक कारणों से वर्णाश्रम व्यवस्था को पुनः स्वीकार करने पर विवश और उत्साहित किया जा रहा था और यह दबाव धर्म का मुखौटा लगाए हुए था।”⁸ उस युग की स्थितियों के बारे में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि “सामाजिक, धार्मिक दुर्व्यवस्थाओं का विरोध विविध सन्तों के उस असन्तोष का फल है जो उन्हें सामाजिक परिस्थितियों के कारण अनुभूत हो रहा था।”⁹ सन्त साहित्य से समाज में व्याप्त ऊँच-नीच के भेदभाव का प्रभाव कम होना स्वाभाविक था। उनकी वाणी लोगों के मन को संतोष प्रदान करती थी। अन्धविश्वासों का भी सन्तों ने पुरजोर विरोध किया है। छुआछूत से विषमता बढ़ती है, इसलिए उन्होंने ऐसी संकीर्ण सोच के उन्मूलन का साहित्य के माध्यम से सन्देश दिया। सन्त नामदेव ने ब्राह्मणों व शूद्र के बीच के भेद को समाप्त करने के लिए उदाहरण देकर लोगों को साहित्य के माध्यम से समझाया कि गाय भले ही लाल, सफेद रंग की हो लेकिन दूध सफेद ही देती है। वे लिखते हैं कि –

“नाना वर्ण गवां उनका एक वर्ण दूध।

तुम कहां के बहमन हम कहां के सूद।”¹⁰

सन्तों के साहित्य में संदेश मिलता है कि सभी जीव ईश्वर द्वारा निर्मित हैं। जाति-पाति, ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा, ब्राह्मण-शूद्र, गरीब-अमीर में भेदवभाव कैसा? सभी प्राणियों को ईश्वर की भक्ति करनी चाहिए। रविदास लिखते हैं कि –

“जन्मजात मत पूछिए, का जात अरु पात।

रविदास पूत सभ प्रभ के, कोई नहिं जात कुजात।”¹¹

संत कवि गुरु नानक देव जी ने भी समाज में फैली हुई रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, पाखण्डों, गलत परम्पराओं का जोरदार विरोध किया। वे मानते हैं कि आडम्बर, पाखण्ड एवं हठ—क्रियाएँ कितनी भी मनुष्य कर ले, लेकिन न तो वह भक्ति ठीक से कर सकेगा और न ही उसे ईश्वर की कृपा प्राप्त हों —

“पाखंडि भगति न होवई,
पर ब्रह्म न पाइआ जाई।”

यथा —

“भेखि अगनि न बुझई, चिन्ता है मनमाहि।
बामी मारी सांपु ना मरै, निगुरै कमाहि।”¹²

संत दादूदयाल ने भी अपने साहित्य में बाह्याचारों एवं आडम्बरों का पुरजोर विरोध किया है। उन्होंने मांसाहारी मुसलमानों को निर्दयी, निष्ठुर, निर्मम, कठोर, अचेत, कुकर्मी कहा है। वे कहते हैं कि बकरे की गर्दन काटते समय कलमा पढ़ने से क्या लाभ? क्या वह मांस पवित्र बन जायेगा? जब जीवों की हत्या करके अपना यकीन और ईमान दूषित कर लिया तो फिर पांच बार नमाज पढ़ने से क्या लाभ —

“दादू गल काटै कलमा भरै, अईया विचारा दीन।
पंचौ बषत निवाज गुजारै, स्याबति नहीं यकीन।
दादू नाहर सिंध सियाल सब, केते मुसलमान।
मांस षाय मोमिन भए, बड़े मियां का ग्यांन।”¹³

संत मलूकदास भी झूठे अन्धविश्वासों व आडम्बरों का विरोध करते हैं। वे मानते हैं कि आत्मा ही परमात्मा है। ईश्वर तो सभी जीवों के अन्दर है। उसे ईश्वर इधर—उधर ढूँढने की आवश्यकता नहीं। चाहे हिन्दू हों या मुसलमान सभी धर्मों के भक्त ईश्वर को बाहरी मन्दिर, मस्जिद में पूजने जाते हैं। सब व्यर्थ है। इसकी कोई आवश्यकता नहीं। वे लिखते हैं कि

“कहै मलूक अब कजा न करि हौं,
दिल ही सों दिल लाया,
मक्का हज हिए में देखा,
पूरा मुरशिद पाया।”¹⁴

कबीर ने पाखण्डी साधु—पण्डितों को साहित्य के माध्यम से प्रताड़ित किया है। वे तिलक, छाप की धोती, भस्म लगाना, तीर्थ, व्रत, दान देने आदि पाखण्डों के घोर विरोधी थे। प्रायः तीर्थ स्थानों पर धर्म के प्रचार—प्रसार या पूजा—पाठ कराकर जन्म लाभ दिलवाने वाले लालची ब्राह्मणों को वे ठग कहते हैं —

“गज साढ़ै तै धोतिया तिहरे पाइनि तग।
गलि किन्हा जयमालिआ, लोटे हथि निबग।
ओइ हरि के संत न आखि अहि, बनारसि के ठग।”¹⁶

संत चरणदास तामसिक विचारों को फैलाने वालों को फटकार लगाते हुए कहते हैं कि — “तू भूतों की क्या सेवा करता है? वे भूत न तो दिखाई देते हैं, न मुख से बोलते हैं, और न लेन—देन करते हैं। जिनके लिए तू घी की ज्योति जलाता है, नाना प्रकार के व्यंजन तैयार करता है और बड़ी श्रद्धा से धन व्यय करता है, वे वेद स्वप्न में भी तेरा अर्पण स्वीकार नहीं करते। भूत वाला पाखण्डी व्यर्थ ही दिन—रात जागरण करता है, देवी पूजा में गीत गाता है और मस्ती में आकर सिर हिलाता है, सपरिवार उसके चरण स्पर्श करके झूठे

वचन बोलता है।" संत कवि सुन्दरदास आत्मा को सभी बन्धनों से मुक्त मानते हैं। वे कहते हैं आत्मा सभी के शरीर में समान रूप से विद्यमान है –

**“तेसै ही सुन्दर ऊँच नीच मध्य एक ब्रह्म।
देह भेदी देखि भिन्न भिन्न नाम धरयो है।”¹⁷**

सन्त साहित्य में सभी सन्त कवियों ने अपने आन्तरिक नैतिक बल और स्वाभिमान के सहारे छुआछूत की व्यापक भावना के विरुद्ध आवाज उठाई। डॉ. पीताम्बर बड़थवाल के शब्दों में, “उदात्त मानवीय संवेदना से अनुप्राणित होने के कारण उन्होंने अपनी जाति की हीनता—ग्रन्थि को उखाड़ फेंकने के लिए जिस शक्ति, सौन्दर्य तथा अदम्य साहस का परिचय दिया, वह अभिनन्दनीय है। सारे समाज से उपेक्षित होकर भी वे उपेक्षित न रहे।¹⁸ दिनेश चन्द्र भारद्वाज के शब्दों में, “सम्पूर्ण समाज विभिन्न जातियों में विभाजित हो गया था, जिसमें परस्पर आदान—प्रदान की कम सम्भावनाएँ रहती थीं। ब्राह्मण, राजपूत, कायस्थ और वैश्यों का समाज में उच्च स्थान था, परन्तु शूद्रों की दशा पूर्व की अपेक्षा और गिर गई थी।”¹⁹ कबीर हिन्दू—समाज में व्याप्त आडम्बरों का न केवल विरोध करते थे बल्कि घृणा भी करते थे। जन्म सभी जीवों का एक ही मार्ग से होता है। सबके हाड़, मांस, खून व मल—मूत्र में कोई अन्तर नहीं तो फिर भेदभाव कैसा? वे कहते हैं –

**“जे तू बांमन बामनी जाया,
तो आन बाट हवै काहे न आया।”²⁰**

यथा –

**“एक बूंद एकै मल मूतर, एक चाम, एक गूदा।
एक जोति थै सबै उतपनां, कौन ब्राह्मन कौन सूदा।”²¹**

संत कवि दरिया साहब कहते हैं कि – सबमें एक ही भगवान विद्यमान है। फिर भेदभाव कैसा?

**“एकै ब्रह्म सकल घटत भाषत, अब कहिये किमि खंडित।
ब्राह्मण, क्षत्री, बैस, सूद सभ, हिन्दू तुरूक किमि कहिए।
माटी एक नाना बिधि बासनएक जिमी पर रहिए।”²²**

सारांशतः उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि संत साहित्य में एकता एवं समत्व की भावना परिव्याप्त है। उन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त अन्धविश्वासों, आडम्बरों का अपने साहित्यिक गलियारे से विरोध किया व समाधान भी साहित्यिक गलियारे से ही दिखाया। संतों का साहित्य समाज सुधारों की भावना से ओत—प्रोत था, जिसमें उन्होंने अनेकों स्थानों पर साहित्य के माध्यम से संकीर्णताओं को त्यागकर, मानवता के उद्धार के लिए व समाज को प्रगति के पथ पर आगे ले जाने के सार्थक प्रयास किए। युगों—युगों से दिग्भ्रमित एवं पीड़ित जनता के लिए सन्तों का साहित्य सदैव ज्योतिर्मय एवं अमृत संजीवनी रहा है। सन्त साहित्य मानवता के लिए मंगल कोष सिद्ध हो चुका है। सन्त साहित्य हमारे देश में ही नहीं अपितु संसार की समस्त मानवता के लिए आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना कल था। गुरु रवीन्द्र नाथ टैगोर की उक्ति, “विश्व शान्ति के लिए सन्तों का काव्य मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है।” आज चरितार्थ होती प्रतीत होती है। संत जनमानस के कवि थे। उनके ज्ञानमार्गी उपदेश युगों—युगों तक प्रासंगिक रहेंगे। निश्चित ही सन्त साहित्य में अहिंसा की शक्ति से हिंसा को भगाने का संदेश मिलता है। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से वर्ण भेद को समाप्त करके समता को प्रतिष्ठित करने का संदेश मानव को दिया। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी भी सन्तों के साहित्य को आत्मसात करके

उनके द्वारा निर्देशित रास्ते पर चले और ऊँच-नीच के भेद को मिटाकर 'हरिजन' नाम की पुष्टि की। अतः हम कह सकते हैं कि सन्त साहित्य की प्रासंगिकता आज भी उतनी ही है, जितनी कल थी और भविष्य में भी रहेगी।

संदर्भ

1. रविन्द्र कुमार सिंह, संत काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता, पृ. 34
2. डॉ. नगेन्द्र, आस्था के चरण, पृ. 186
3. डॉ. नामवर सिंह, इतिहास और आलोचना, पृ. 17
4. डॉ. अमर सिंह वधान, भाषा, साहित्य और संस्कृति, पृ. 117
5. रविन्द्र कुमार सिंह, संत काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता, पृ. 64
6. वही, पृ. 65
7. डॉ. राजदेव सिंह, सन्तों का भक्ति योग, पृ. 165
8. डॉ. राजदेव सिंह, सन्त साहित्य की भूमिका, पृ. 48
9. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, मध्यकालीन धर्म साधना, पृ. 94
10. वियोगी हरि, सन्त सुधा सार (नामदेव), पृ. 55
11. पृथ्वी सिंह आजाद, रविदास दर्शन, पृ. 124
12. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब (महला), पृ. 846, 488
13. परशुराम चतुर्वेदी, दादूदयाल ग्रंथावली, पृ. 147-148
14. सं. गणेश प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी के कवि और काव्य, द्वितीय खण्ड, पृ. 235
15. सं. श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, 91
16. वही, पृ. 142
17. सं. परशुराम चतुर्वेदी, दादूदयाल ग्रंथावली, पद 19, पृ. 273
18. सं. आचार्य पृथ्वी सिंह आजाद, युग प्रवर्तक संत गुरु रविदास, पृ. 107
19. दिनेश चन्द्र भारद्वाज, मध्यकालीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति, पृ. 30
20. सं. श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, पद 41, पृ. 79
21. वही, पद 57, पृ. 82
22. सं. डॉ. धमेन्द्र ब्रह्मचारी, संत दरिया : एक अनुशीलन, खण्ड 5, पृ. 94